“थिरु घरि बैसहु हरिजन पिआरे”

थिरु घरि बैसहु हरिजन पिआरे।।
सतिगुर तुमरे काज सवारे।। (पृ. २०१)

गुरबाणी की इन पंक्तियों के साधारण अर्थ इस प्रकार हैं—

गुरु साहिब अपने गुरसिक्खों, हरिजन प्यारों के प्रति उपदेश देते हैं कि अपने मन को अपने ‘थिरु घरि’ अथवा **‘आत्मा’ में टिका कर बैठे रहो, तो सतिगुरु तुम्हारे कार्य सम्पन्न कर देगा।**

यह बात है तो सीधी-सादी, परन्तु इसमें अत्यन्त **गहरे आत्मिक ‘भेद’ छुपे हुए हैं।** इसलिए इन गुप्त **‘आत्मिक भेदों’ को स्पष्ट करने के लिए विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।**

इसकी प्रथम पंक्ति के मूल तीन शब्दों **‘थिरु घरि बैसहु’ के भावार्थ तथा गुप्त भेदों की** अलग-अलग **व्याख्या** की जाती है।

१. ‘थिरु’—‘थिरु’ शब्द इस पक्तिं में **‘घरि’** शब्द का विशेषण है, जिससे सिद्ध होता है कि हमें गुरबाणी प्रेरणा करती है कि हम अपने ‘मन’ को ऐसे घर में टिका लें—**जो सदैव, निश्चल, स्थिर, स्थायी, अटल तथा अचल है।**

परन्तु हमारे बाह्यामुखी दिमागी ज्ञान अनुसार हम ईंटों, गारे, सीमेंट, लकड़ी आदि से बने हुए दृष्टमान घरों को ही अपना **‘निज घर’** अथवा **‘थिरु घरि’** समझते हैं।

यह दृष्टमान ‘घर’ सदा बदलते रहते है तथा गिरते रहते हैं। इसलिए यह नश्वर घर—**‘थिरु घरि’ अथवा ‘निज घर’ नहीं कहला सकते।**

इसके विपरीत गुरबाणी में दर्शाये गये आत्मिक मंडल के **'थिरु घरि' अथवा 'निज घर' का**—

स्थिर

निश्चल

स्थायी

अचल

अटल

अविनाशी

अदृष्ट घर की ओर संकेत है।

हमारे मनोकल्पित अथवा दृष्टमान नश्वर 'घर' तथा आत्म मंडलके 'थिरु घरि'—

का स्पष्ट ज्ञान, सूझ तथा चुनाव

करने की आवश्यकता है। इस 'चुनाव' के लिए गुरबाणी हमारी इस प्रकार सहायता तथा मार्गदर्शन करती है—

जो घरु छडि गवावणा सो लगा मन माहि।।
जिथै जाइ तुधु वरतणा तिस की चिंता नाहि।। (पृ.४३)

डडा डेरा इहु नही जह डेरा तह जानु।।
उआ डेरा का संजमो गुर कै सबदि पछानु।। (पृ. २५६)

लाज न मरहु कहहु घरु मेरा।।
अंत की बार नही कछु तेरा।। (पृ. ३२५)

मनमुख हउमै माया सूते।।
आपणा घरु न समालहि अंति विगूते।। (पृ. १०४)

इसके **ठीक विपरीत** गुरबाणी में **'थिरु घरि' अथवा 'निज घर'** की सुन्दर तस्बीर इस प्रकार खींची गई है—

नानक बधा घरु तहां जिथै मिरतु न जनमु जरा।। (पृ. ४४)

मुकामु तिसनो आखीऐ जिसु सिसि न होवी लेखु।।
असमानु धरती चलसी मुकामु ओही एकु।। (पृ. ६४)

बेगमपुरा सहर को नाव।।
दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ।।
नां तसवीस खिराजु न मालु।।
खउफु न खता न तरसु जवालु।।१।।
अब मोहि खूब वतन गह पाई।।
ऊहां खैरि सदा मेरे भाई।।रहाउ।।
काइमु दाइमु सदा पातिसाही।।
दोम न सेम एक सो आही।।
आबादानु सदा मसहूर।।
ऊहां गनी बसहि मामूर।।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै।।
महरम महल न को अटकावै।।
कहि रविदास खलास चमारा।।
जो हम सहरी सु मीतु हमारा।। (पृ. ३४५)

अबिचल नगरु गोबिंद गुरु का
नामु जपत सुखु पाइआ राम।। (पृ. ७८३)

कहु नानक मै सहज घरु पाइआ
हरि भगति भंडार खजीना।। (पृ. १२११)

इस **आत्म मंडल के 'थिरु घरि' को गुरबाणी में अन्य कई नामों द्वारा सम्मानित किया गया है,** जैसे कि—

सच खंड
दरु घरु
हरि दरु
निहचल आसाण
निज घर
निहचल सचु थाना

अनभउ नगर

सच घर

बेगमपुरा

हरि का धाम

आपनड़ा घर

सुख महल

बैकुंठ नगर

अबिचल नगर

संत मंडल

सहिज घर

अबिनासी महल आदि।

सच खंडि वसै निंरकारु।। (पृ. ८)

नानक दरु घरु एकु है अवरु न दूजी जाइ।। (पृ. ६०)

हरि दरु सेवे अलख अभेवे
निहचलु आसणु पाइआ।। (पृ. ७९)

निज घरि बैसि सहज घरु लहीऐ।।
हरि रसि माते इहु सुखु कहीऐ।। (पृ. २२०)

सहज सिफति भगति ततु गिआना।।
सदा अंनदु **निहचल सचु थाना।।**
तहा संगति साध गुण रसै।।
अनभउ नगरु तहा सद वसै।। (पृ. २३७)

नानक **सच घरु** सबदि सझापै
दुबिधा महलु कि जाणै।। (पृ. २४३)

बेगमपुरा सहर को नाउ।।
दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ।। (पृ. ३४५)

मुकति बैकुंठ साध की संगति
जन पाइओ हरि का धाम।। (पृ. ६८२)

आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि।।
सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि।। (पृ. ७२२)

सूरव महल जा के ऊच दुआरे।।
ता महि वासहि भगत पिआरे।। (पृ. ७३९)

बैकुंठ नगरु जहा संत वासा।।
प्रभ चरण कमल रिद माहि निवासा।। (पृ. ७४२)

अबिचल नगरु गोबिंद गुरु का
नामु जपत सुरवु पाइआ राम।। (पृ. ७८३)

संत मंडल ठाकुर बिस्राम।। (पृ. ११४६)

कहु नानक मै सहज धरु पाइआ
हरि भगति भंडार रवजीना।। (पृ. १२११)

इन दोनों **'घरों'**—'दृष्टमान नाशवान घर' तथा 'अनुभवी निज घर' के विषय में पृथक-पृथक स्पष्ट ज्ञान, निश्चय तथा चुनाव होना आवश्यक है।

यह—

निज
अबिचल नगर
बेगमपुरा
नानक मंडल
प्रीत देश
नाम रस का देश
प्रेम स्वैपना का इलाही किला
अविचल ज्योति का देश

कहीं—

धरती पर
आकाश में
अन्तरिक्ष में
पाताल में

छुपा हुआ नहीं है।

तथा न ही यह—

ईटों
गारे
सीमेंन्ट
पत्थर
संगमरमर
लकड़ी

आदि का बना हुआ है!

यह तो—

**प्रकाश रूप
शब्द रूप
रस-रूप
प्रीत-आकर्षण
प्रेम-मस्ती
प्रेम-स्वैपना
ज्योति-विगास
अनहद धुन
नाम-रुप
शब्द-रूप**

है तथा हमारे शरीर में **अन्तर्तात्मा में छुपा हुआ है।**

काइआ बहु खंड खांजते नवनिधि पाई।। (पृ. ६९५)

काइआ नगरी महि मंगणि चड़हि जोगी
ता नामु पलै पाई।। (पृ. ९०८)

काइआ नगरी सबदे खोजे नामु नवं निधि पाई।। (पृ. ९१०)

मेरै करतै इक बणत बणाई।।
इसु देही विचि सभ वथु पाई।। (पृ. १०६४)

उस आत्मिक देश अथवा 'बेगमपुरा' में बसने के लिए, भौतिक शरीर या यह साँसारिक घर को **त्यागने की आवश्यकता नहीं क्योंकि निरंकार का देश अति सुक्ष्म है। यह हमारी बुद्धि-मंडल की सोच-विचार की पकड़ में नहीं आ सकता।**

यह तो केवल **'अनुभव प्रकाश' द्वारा ही 'बूझा या पहचाना' जा सकता है।**

संसार में रहते हुए केवल—

साध-संगत के मेल
गुरबाणी के प्रकाश
मन के आत्मिक सेध
आत्म-परायण होकर
नाम-अभ्यास करते हुए
शब्द सुरति लिवलीन होकर
गुर प्रसादि

द्वारा ही, इस 'अदृश्य इलाही मंडल' का आन्नद लिया तथा अनुभव किया जा सकता है।

इस 'बेगमपुरे', 'निज घर' की खोज एवं अनुभव की प्राप्ति के लिए गुरबाणी इस प्रकार मार्गदर्शन करती है—

सबदि मनु रंगिआ लिव लाइ।।
निजघरि वसिआ प्रभ की रजाइ।। (पृ. २३३)

साधू कै संगि महलि पहुचै।। (पृ. २७१)

रामनाम जपि हिरदे माहि।।
नानक पति सेती घरि जाहि।। (पृ. २८३)

साच सबदु बिनु महलु न पछाणै।। (पृ. ४१४)

सचु सबदु कमाईऐ निजघरि जाईऐ
पाईऐ गुणी निधाना।। (पृ. ४३६)

प्रभु अपुना रिदै धिआए।।
घरि सही सलामति आए।। (पृ. ६२९)

सबदु चीनहि ता महलु लहहि जोती जोति समाइ।। (पृ. ६४९)

मुकति **बैकुंठ साध की संगति**
जन पाइओ हरि का धाम।। (पृ. ६८२)

संत प्रसादि निहचलु घरु पाइआ।। (पृ. ७४४)

नदरि प्रभू सत संगति पाई निजघरि होआ वासा।। (पृ. ७७४)

गुरमुखि राते सबदि रंगाए।।
निजघरि वासा हरिगुण गाए।। (पृ. ७९८)

विणु भगती घरि वासु न होवी सुणिअहु लोक सबाए।। (पृ. ६८९)

नउ दरवाजे साधि साधु सदाइआ।
वीह इकीह उलंघि निज घरि आइआ।। (वा.भा.गु.२२/६)

'बैसहु'—हमारा चंचल मन एक क्षण के लिए भी टिक नहीं सकता। **मन को टिकाने के लिए किसी खास केन्द्र** (point) **की आवश्यकता होती है, जिस पर यह मन ध्यान केन्द्रित करके अपनी सुरति-वृत्ति को टिका सके।**

गुरमति अनुसार यह केन्द्र **'गुरुमन्त्र' अथवा 'गुरुशब्द' है।**

चंचल मन के—

'शब्द' पर टिकने के लिए
'नाम-सिमरन' करने के लिए
'शब्द-सुरति' अभ्यास के लिए

अत्यंत दृढ़ता तथा प्रयास की आवश्यकता है। इस सिमरन-अभ्यास के लिए 'साधसंगति की प्रेरण तथा सहायता की अत्यन्त आवश्यता है।

मिलु साध संगति भजु केवल नाम।। (पृ. १२)

हरि का नामु धिआईऐ सतसंगति मेलि मिलाइ।। (पृ.२६)

साध संगि जपिओ भगवंतु।। (पृ. १८३)

प्रभ का सिमरनु साध कै संगि।। (पृ. २६२)

संत की सेवा नामु धिआईए।। (पृ. २६५)

नानक जपीऐ मिलि साध संगति
हरि बिनु अवरु न होरु।। (पृ. ४०५)

साध संगि हरि हरि नामु चितारा।। (पृ. ७१७)

मिलि साधू हरिनामु धिआईऐ।। (पृ. ८०४)

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै।। (पृ. ८१७)

सत संगति हरि मेलि प्रभ हरि नामु वसै मनि आइ।। (पृ. १४१७)

साधसंगति में विचरण करते हुए, लगातार अटूट सिमरन द्वारा, गुरशब्द हमारे मन-तन-चित्त-अन्तः करण में धस-बस-रस कर रोम-रोम में समा जाता है।

साध संगति मनि वसै साचु हरि का नाउ।। (पृ. ५१)

मिलि संगति मनि नामु वसाई।। (पृ. ९५)

सत संगति साधू लगि हरिनामि समाईऐ। (पृ. ६४३)

संत मंडल महि हरि मनि वसै।। (पृ. ११४६)

इस प्रकार आत्मिक 'प्रेम-स्वैपना' के नाम-रस अथवा शब्द-सुरति में लीन होकर विस्मादित होना ही—

'थिरु घरि बैसहु हरिजन पिआरे'।। (पृ. २०१)

के उपदेश को कमाना है।

यह उच्च, पवित्र-पावन **आत्मिक 'कमाई'** कोई विरले गुरमुख, हरिजन प्यारे ही करते है। इसलिए यह 'थिरु घरि बैसहु' का उपदेश हरिजन प्यारों के प्रति संबोधित किया गया है।

इसु जुग महि रामनामि निसतारा।।
विरला को पाए गुरसबदि वीचारा।। **(पृ. १६०)**

नन्हे बच्चे (baby) को अपने आप की कोई सूझ-बूझ नहीं होती। वह सहज-स्वभावतः अपने मां-बाप के सहारे पलता है। भोलेपन से ही उसकी अपने **माँ-बाप पर श्रद्धा-भावना तथा टेक होती है।**

इलाही **हुक्म के अनुसार** बच्चे की सेवा-सम्भाल तथा पालन-पोषण की जिम्मेदारी माँ-बाप की है।

बच्चे के **'भोले पन'** (Innocence) **तथा सहज-स्वाभाविक 'श्रद्धा-भाव' की यह कुदरती 'खेल' है।**

ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है, तथा **अहम्-ग्रस्त चतुराई दिखाता है, त्यों-त्यों 'माँ-प्यार' की छत्र छाया या प्रबन्ध में 'विघ्न' डाल कर अपनी ही चतुराईयों में 'कर्म-बद्ध' होकर 'माँ-प्यार' की स्नेहमयी गोद के सुख एवं आनन्द से वंचित हो जाता है।**

इसी प्रकार जब इन्सान अपनी तीक्षण बुद्धि एवं अहम् ग्रस्त चतुराइयों द्वारा इलाही सुखदायी तथा आत्मिक छत्र – छाया से **'विमुख' होकर अपने आप को**

'कर्त्ता' समझता है, तब वह इलाही प्यार की स्नेहमयी ईश्वरीय 'गोद' से वंचित हो जाता है ।

इसी प्रकार जब 'गुरमुख जन' अथवा 'हरिजन-प्यारे' अपने **कूड़ (मिथ्या) अहम् अथवा**

चतुराईयों
उक्तियों-युक्तियों
उधेड़-बुन
ज्ञान
दार्शनिकता
'क्यों'
'क्या'
'कैसे' के—
फिकर
चिंता
डर

वाली बुद्धि के **ढकोसलों एवं योजनाओं को छोड़ कर, नन्हें बच्चे की भांति, सतिगुरु की चरण-शरण, प्रेम-स्वैपना की स्नेहमयी गोद अथवा 'थिरु घर' में 'बैस के'** अटूट सिमरन द्वारा **शब्द-सुरति में 'लिव' लगाते हैं,** तभी सतिगुरु की **बख्शीशें** प्राप्त होती हैं, जिन्हें गुरबाणी में यूँ ब्यान किया गया है—

थिरु घरि बैसहु हरि जन पिआरे ।।
सतिगुरि तुमरे काज सवारे ।
दुसट दूत परमेसरि मारे ।।
जन की पैज रखी करतारे ।।
बादिसाह साह सभी वसि करि दीने ।।
अंम्रित नाम महा रस पीने ।।
निरभउ होइ भजहु भगवान ।।
साध संगति मिलि कीनो दानु ।।
सरणि परे प्रभ अंतरजामी ।।
नानक ओट पकरी प्रभ सुआमी ।। (पृ. २०१)

जब 'हरिजन' सतिगुरु की **प्रेम-स्वैपना के इलाही मंडल में 'बेबी'** (baby) **की भांति** भोले-भाव रहता है, तब सतिगुरु उस गुरमुख रूह को इस प्रकार **प्यार सहित सम्मानित करता है —**

> हरि जी माता हरि जी पिता हरि जीउ प्रतिपालक ॥
> हरि जी मेरी सार करे हम हरि के बालक ॥
> **सहजे सहजि खिलाइदा नही करदा आलक ॥**
> **अउगणु को न चितारदा गल सेती लाइक ॥**
> **मुहि मंगा सोई देवदा हरि पिता सुखदाइक ॥**
> **गिआनु रासि नामु धनु सउपिओनु इसु सउदे लाइक ॥**
> **साझी गुर नालि बहालिआ सरब सुख पाइक ॥**
>
> **मै नालहु कदे न विछुड़ै**
> **हरि पिता सभना गला लाइक ॥** (पृ. ११०२)
>
> **खेल खिलाइ लाड लाडावै सदा सदा अनदाई ॥**
> **प्रतिपालै बारिक की निआई जैसे मात पिताई ॥** (पृ. १२१८)

छोटे बच्चे (baby) के इस **उदाहरण** से सिद्ध हुआ कि—

१. अहम्-ग्रसत **चतुराइयों को त्यागने के लिए ।**

२. चतुराइयों से उत्पन्न **फिकर, चिंता-चिंता से बचने के लिए ।**

३. **सदैव, अटल, कुशल-मंगल प्राप्त करने के लिए ।**

४. **'थिरु घरि' बैस के, बेपरवाह तथा बेफिकर होने के लिए ।**

५. इलाही **बख्शीशों के पात्र बनने के लिए ।**

६. अपने समस्त **साँसारिक एवं आत्मिक कार्य संवारने के लिए 'बेबी' की भांति,** हमारे मन में अकाल पुरुष पर **पूर्ण विश्वास होना अनिवार्य है** तथा उसके—

> सदा अंग संगे
> हाथ पै नेरै
> रखै जीअ नाले
> साच दृढ़ावै
> अकथ कथावै
> सद बख्शिंद

सदा मिहरवाना
सब सूखन को दाता
सब दूखन को हंता
अउगुण को न चितारे
अंती अउसर लए छडाए
दइआ निधि
भगत वछल
प्रेम-पुरख
प्रतिपाले नित सार समाले
खेल खिलावै
लाड लडावै
मात पिताई

होने का 'बेबी'(baby) की भांति सहज-स्वाभावित दृढ़ निश्चय होना जरूरी है ।

गुरमुखि मनि बीचारिआ जो तिसु भावै सु होइ ॥
नानक आपे ही पति रखसी कारज सवारे सोइ ॥ (पृ. ५८६)

ऐसे भोले-भाव दृढ़ विश्वास के बिना हम कदाचित 'थिरु घरि' में 'बैस' नहीं सकते तथा न ही हमारे कार्य सम्पन्न हो सकते हैं । क्योंकि इस **अनिंन आत्मिक विश्वास के अभाव में, हमारा अहम्-ग्रस्त मन** अपनी चतुराईयाँ ही दिखाता रहेगा तथा सतिगुरु के **'इलाही-माँ-प्यार'** अथवा लाड **एवं बख्शिशों** से वंचित रहेगा ।

गुरबाणी में इन्सान की इस अधोगति को यूं दर्शाया गया है—

मनमुख हुक्मु न जाणनी तिन मारे जमजंदारु ॥ (पृ. ९०)

आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा खावै ॥ (पृ. ६०१)

आपणै भाणै कहु किनि सुखु पाइआ अंधा अंधु कमाई ॥
(पृ. १२८७)

आपणै भाणै किनै न पाइओ जन वेखहु मनि पतीआइ ॥
(पृ. १३१४)

इकि हुक्मु मंनि न जाणनी भाई दूजै भइ फिराइ ॥ (पृ. १४१९)

यदि हम पुनः अकाल पुरुष **की सुखदायी गोद के स्नेह का पात्र बनना चाहते हैं, तब** हमें गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियों के प्रकाश में **अपना जीवन ढ़ालना पड़ेगा —**

सुखु नाही रे हरि भगति बिना ।। (पृ. २१०)

तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ ।।
एक आस हरि मनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ ।।
(पृ. २८१)

सतिगुरु सुख सागरु जग अंतरि होरथै सुखु नाही ।। (पृ. ६०३)

अबिनासी खेम चाहहि जे नानक सदा सिमरि नाराइण ।।
(पृ. ७१४)

जे लोड़हि सदा सुखु भाई ।।
साधू संगति गुरहि बताई ।। (पृ. ११८२)

जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह ।। (पृ. १४२७)

परन्तु हम अपनी आदतों, निश्चयों **एवं अन्तःकरण के गहरे प्रभाव के आधीन 'कर्म-बद्ध' होकर** दैनिक जीवन के 'बहाव'(routine) में इतने गलतान, मस्त एवं खोये रहते हैं कि **पुरानी जीवन प्रणाली में से निकले का हमें कभी —**

ख्याल
विचार
चाव
प्रयास
उत्साह

ही नहीं आता !

जन्म-जन्मान्तरों से हमने अपने अन्तःकरण के अधीन पुराने ख्यालों, निश्चयों का इतना **अभ्यास** (practice) **किया हुआ है कि अहम्पूर्ण 'भ्रम-गढ़' के भँवर में ही पलचि-पलचि कर हम अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गँवा रहे हैं ।**

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधे मोहु ।। (पृ. १३३)

इन पुराने ख्यालों, निश्चयों, आदतों के दुखदायी चक्कर के बाहर **किसी अन्य** —

उच्च
उत्तम
सुन्दर
सुखदायी
कल्याणकारी

आत्मिक जीवन के विषय में हमें —

पता ही नहीं
लालसा ही नहीं
आवश्यकता ही नहीं

प्रयास तो क्या करना था ।

चाहे हम अहम्-ग्रस्त पुरानी 'जीवन-प्रणाली' में विचरण करते हुए दुखी होकर **'हाहाकार' भी करते हैं ।** साथ ही साथ हम उत्तम, सुखदायी, आत्मिक जीवन-सेध के विषय में —

पढ़ते-पढ़ाते
सुनते-सुनाते
समझते-समझाते
ज्ञान घोटते
फिलोस्फियाँ घोटते
वाह-वाह करते
सिर हिलाते
गद्‌हा – वैराग के आँसू बहाते
कर्म-काण्ड करते
पाठ-पूजा करते
भद्र-पुरुष

होते हुए भी, **अपनी पुरानी जीवन प्रणाली** (old routine) **को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है । इसी कारण सब धार्मिक कर्म-धर्म करते हुए भी हमारे जीवन में कोई 'परिवर्तन' नहीं आता ।**

पँचों का कहा सिर मत्थे,
परनाला उत्थे दा उत्थे ।

वाली हमारी हास्यप्रद 'जीवन चाल' है ।

अब सवाल यह है कि 'बेबी' (baby) **जैसा भोला-भाव विश्वास (innocent faith) की प्राप्ति कैसे हो सकती है?**

ऐसा आत्मिक 'सहज-विश्वास'—

पढ़ने से
दिमागी ज्ञान से
फिलोस्फियों से
पाठ-पूजा से
कर्म-काण्डों से
योग साधनाओं

द्वारा **बाहर से प्राप्त नहीं हो सकता,** क्योंकि **बाह्यमुखी मानसिक निश्चय, श्रद्धा, विश्वास, अल्प बुद्धि तक 'सीमित' है** तथा हमारे **मन की रंगत अनुसार सदा 'बदलता' रहता है ।**

इसके विपरीत आत्मिक श्रद्धा तथा विश्वास अन्तर्आत्मा में से —

भोले-भाव ही
सहज-स्वभावतः
स्फूटित

होता है—जो दृढ़ तथा अटल होता है । ऐसा आत्मिक विश्वास —

गुरुमुख-प्यारों
बख्शे हुए महापुरुषों
आत्मिक जीवन वाले
हरिजनों

की सेवा तथा संगत में उत्पन्न एवं प्रफुल्लित हो सकता है ।

साध कै संगि लगै प्रभु मीठा ॥ (पृ. २७२)

साध कै संगि द्रिड़ै सभि धरम ॥ (पृ. २७१)

साध संगति उपजै विस्वास ॥
बाहरि भीतरि सदा प्रगास ॥ (पृ. ३४३)

संत सेवा करि भावनी लाईऐ
तिआगि मानु हाठीला ॥ (पृ. ४९८)

साध संगति बिना भाउ नही ऊपजै
भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ॥ (पृ. ६९४)

सत संगति मिलै त दिड़ता आवै
हरि राम नामि निसतारे ॥ (पृ. ९८१)

उपरोक्त विचारों से पता लगा कि सृष्ठि में दो अलग-अलग विपरीत मंडल हैं—

१. **अहम्-ग्रस्त चतुराईयों का मंडल**—जिसमें दुख, क्लेश, चिंता, फिकर एवं तृष्णा की अग्नि प्रवृत्त है ।

२. **'निज घर', बेगमपुरा अथवा 'अनुभवी मंडल'** जिसमें—

सदा खैर
सदा सुख
सदा खुशी
प्रीत
प्रेम
रस
चाव
नाम
शान्ति

प्रवृत्त है।

मनुष्य के सम्मुख यह **महत्त्वपूर्ण चुनौती** है कि वह इन दोनों मंडलों में से किस मंडल में विचरण करना एवं रहना चाहता है । **इस का निर्णय अथवा 'फैसला' हमारे निश्चयों, भावनाओं एवं 'अनुभव' पर निर्भर है ।**

V V V